P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय कला में निहित प्रतीक– पद्म, चक्र व कलश

रीतिका गर्ग
असिस्टेंट प्रोफेसर,
चित्रकला विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर, राजस्थान, भारत

सारांश

भारतीय कला अत्यन्त प्राचीन होने से अनेक युगों की संस्कृति को अपने भीतर समेटे हुए है। जब मानव जीवन में धर्म का व्यापक प्रभुत्व था तब और आज जब मानव जीवन विज्ञान के नवीन वातावरण में लीन है तब भी कला अपने अस्तित्व को बनाये हुए है। कला के माध्यम की भाषा किंचित रहस्यमय प्रतीत होती है परन्तु वही उसके अस्तित्व व आकर्षण का मुख्य आधार है। चित्रण में प्रतीक रूपों का सृजन करना मानव का सहज स्वभाव रहा है। जहाँ सामान्य भाषा मानव–मन की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ रहती है वहाँ प्रतीक–विधि का प्रयोग किया जाता है। भारतीय कला में प्रतीकों का बहुत अधिक प्रयोग किया गया। वैदिक काल से ही स्वास्तिक, कमल, शंख, चक्र, छत्र, वेदी, सूर्य, चन्द्र, तारे, वज्र, गरूड़, नाग, कल्पवृक्ष, कलश, हंस, हाथी आदि विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। उत्तरोत्तर काल में भी इन प्रतीकों का चित्रण अनेक अर्थो को निहित करने के लिये किया गया। इनमें पद्म, कलश व चक्र आदि का प्रयोग बार–बार प्रतीक रूप में हुआ।

मुख्य शब्द : संस्कृति, अस्तित्व, किंचित, रहस्यमय, प्रतीक, अभिव्यक्त।

प्रस्तावना

प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में प्रतीकों के माध्यम से गहनतम भावों, विचारों व अनुभूतियों को व्यक्त किया जाता रहा है। चित्रण में प्रतीक रूपों का सृजन करना मानव का सहज स्वभाव रहा। जब हम विचार करते–करते किसी ऐसे स्तर पर पहुँच जाता हैं जहाँ सामान्य भाषा–पद्धति हमारी अनुभूतियों को व्यक्त करने में असमर्थ रहती है तो हम प्रतीक विधि का आश्रय लेते हैं। प्रतीकों का निर्माण केवल संसार में देखे गये नियमों के आधार पर ही नहीं होता। कलाकार अनेक लौकिक वस्तुओं के संयोग से भी प्रतीक सृष्टि करते हैं और ऐसी सूक्ष्म आकृतियाँ भी प्रस्तुत करते हैं जिनका सादृश्य कहीं नहीं मिलता।[1] धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक व कलात्मक अर्थात मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रतीक मान्य हुए। भाषा का विकास भी वास्तव में भावों की अभिव्यक्ति का ही प्रतीक है। अनेक प्रतीक तो सार्वजनीन होते हैं जैसे– सिन्धु गंभीरता, पृथ्वी सहनशीलता, ध्रुव अचलता, चन्द्र शीतलता के प्रतीक बन गये। भारतीय कला व साहित्य में तो प्रतीकों का बहुत अधिक प्रयोग हुआ जो वर्तमान समय में भी हमें दृष्टिगोचर हो ही जाता है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय कला में प्रतीकों का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है। सभी प्रतीक अनेक अर्थों को अपने भीतर समेटे है। पद्म, कलश व चक्र को चित्रित कर इनके माध्यम से कलाकारों ने अनेक अनकही बातों को कहने का प्रयास किया। इन प्रतीकों में छिपे गूढ़ अर्थों को गहन विश्लेषण करने के उपरान्त ही जाना जा सकता है। मेरे इस अध्ययन का उद्देश्य पद्म, चक्रव कलश–इन प्रतीकों का अध्ययन कर उन पर प्रकाश डालना है। ताकि यह कला–रसिकों, शोधार्थियों व अध्ययनकर्ताओं की प्रतीकों में निहित अर्थों को समझने में सहायता कर सके।

प्रतीक का अर्थ

'प्रतीक' शब्द की व्याख्या करना सहज रूप में सरल नहीं है। अंग्रेजी भाषा में इसे 'सिम्बल' कहते हैं। प्रतीक न तो लक्षण है, न संकेत और न चिन्ह किन्तु फिर भी वह एक वस्तु या रूप का आभास है। युंग (Jung) के अनुसार किसी अज्ञात वस्तु का भ्रम पैदा करने के लिये प्रतीक रूप की रचना की जाती है और ऐसा माना जाता है कि उस वस्तु का अस्तित्व है अवश्य। प्रतीक, अलौकिक का लौकिक रूपान्तरण माना गया है अर्थात वह एक काल्पनिक सत्ता का दृश्य रूप होता है। हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार– ''कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है।''[2] प्रतीक किसी भावना, परम्परा, व्यक्ति

अथवा अन्य किसी विराट सत्ता को प्रगट करने वाला रूप होता है। भारतीय विचारधारा और मूल्यों के लिए वैदिक संस्कृति की सजीव और अमर देन उसका तत्वज्ञान और प्रतीकवाद है।[3] ऋग्वेद के सूत्र यह प्रमाणित करते हैं कि देवतावाद का प्रादुर्भाव प्रकृति शक्तियों का मानवीकरण है जो धीरे–धीरे भारतीय लोकमानस में लोक देवी–देवताओं के रूप में प्रसिद्ध हुए। वैदिक साहित्य से लेकर कला के निरूपण तक इन वैदिक एवं लोक देवी–देवताओं के रूप, परिधान, अलंकरण, आयुध और वाहन सभी की कल्पना हुई। इन सभी को प्रतीकों के द्वारा भी स्वरूप प्रदान करने की चेष्टा की गई, जैसे– चक्र विष्णु, त्रिशूल व डमरू शिव तथा मोरपंख व बांसुरी कृष्ण का प्रतीक बन गयी। यही नहीं इसी प्रकार विभिन्न देवी–देवताओं हंस ब्रह्मा व सरस्वती, धनुष भगवान राम, मूषक गणेश, मोर कार्तिकेय, ऐरावत इन्द्र आदि के प्रतीक माने गये। डॉ0 जगदीश गुप्त के अनुसार ''जिन विशिष्ट वस्तुओं अथवा आकृतियों के आधार पर हम किसी कलाकृति को सहसा भारतीय कह सकते हैं, उनमें से हंस, हाथी और कमल प्रमुख हैं।''[4]

डॉ0 राधाकमल मुकर्जी के अनुसार ''भारतीय कला के क्षेत्र में वैदिक संस्कृति ने मौलिक विषय और प्रतीक दिए हैं, यथा स्वस्तिक, कमल, शंख, चक्र, छत्र, वेदी, सूर्य, वज्र, नाग–गरूड़, कल्पवृक्ष और पूर्ण कलश, जो कि उत्तरोत्तर युगों में उद्धृत होते रहें।''[5] यही कारण है कि भारतीय कलाकारों ने अपनी कला में इन प्रतीकों का बहुत अधिक प्रयोग किया। इनमें पद्म पुष्प, चक्र व कलश को अनेक अर्थो के प्रतीक रूप में अंकित किया गया है।

पद्म

भारतीय पुष्पों में पद्म पुष्प को प्रमुख स्थान प्राप्त है। जल से सम्बन्धित होने के कारण यह आदि सृष्टि का प्रतीक रहा है इसी से सृष्टि के आदि देवता ब्रह्मा तथा विष्णु व सागर द्वारा उत्पन्न होने वाली देवी लक्ष्मी से भी इसका सम्बन्ध है। विष्णु पुराण में उल्लेख है कि ब्रह्मा मानसरोवर झील में कमल जैसी वस्तु पर विराजते हैं'' कमल की चार पंखुड़ियों की भांति ब्रह्मपुत्र, गंगा, सिन्धु और कावेरी आदि चार पवित्र नदियां इसी झील से फूटती हैं तथा चार विभिन्न दिशाओं में फैलकर जनता को खुशहाल बनाती है।[6] जल में रहकर भी निर्लिप्त रहने वाले कमल ने दार्शनिकों, धार्मिकों तथा विचारकों को यथेष्ट प्रभावित किया और इसे उदासीनता अथवा निर्लिप्त साधक का प्रतीक माना गया है।

अपने रूप व रंगों के कारण कमल श्रृंगार का प्रतीक है और इस रूप में वह मुख, हाथ, पैर एवं नेत्र का उपमान तथा कामदेव के पांच पुष्प बाणों में से एक है।[7] सृष्टि की उत्पत्ति अथवा जल से सम्बन्धित यह सभी देवताओं का आसन भी माना गया है। साथ ही उसे हरिवल्लभ तथा विष्णु–प्रिय भी कहा गया क्योंकि इसे भगवान विष्णु के हाथ में स्थित होने का गौरव भी प्राप्त है। पद्म पुष्प जीवन–तत्व का प्रतीक भी है। साथ ही इसे निर्मलता, कोमलता, पवित्रता, दिव्यता, निष्कलंकता, शुद्धता, निर्लिप्तता, प्रजनन, श्रृंगार, जीवन, पूर्णता, आर्दता, आदि का प्रतीक भी माना गया है।

कलश

पुराणों के अनुसार कलश, प्रचुरता व जीवन के स्त्रोत से सम्बन्धित है। पूर्ण घट एक वैदिक प्रतीक है। इसे सोम–कलश, चन्द्र–कलश, इन्द्र–कुम्भ, पूर्णघट, भद्रघट तथा मंगल–घट भी कहा जाता है। पूर्ण कुम्भ, सुख–सम्पत्ति तथा पूर्णता का प्रतीक है। आज भी मांगलिक अवसरों पर सौभाग्यशाली नारियां पूर्णघट या जलकलश को सिर पर रखकर शोभा यात्राओं में चलती हैं। धार्मिक पूजा में इसे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के प्रतीक स्वरूप स्थापित करके सबसे पहले पूजा जाता है।[8] शक्ति की उपासना में भी इसका विशेष महत्व है। जलपूरित कलश समृद्धि का भी प्रतीक है। ऐसी मान्यता है कि कलश में अमृत का वास है जो जीवन अमृत है और पूर्णता, प्रचुरता, ज्ञान तथा अमरता का प्रतीक है।

पद्म–पुष्प व पत्तों से लहलहाता हुआ कलश जीवन के जल को धारण करने वाले मानव शरीर का प्रतिरूपक है। अथर्ववेद में घृत और अमृत से भरे पूर्ण कुम्भ का उल्लेख मिलता है। समुद्र कलश या जल–कलश सुख–सम्पत्ति व जीवन की पूर्णता का प्रतीक है। पानी से ऊपर तक भरा हुआ पूर्णघट ईश्वर की उपस्थिति का प्रतीक है।[9] ज्ञान, पूर्णता, ऊर्जा, जीवन, सुख, समृद्धि, मंगल, त्रिदेव, शक्ति व सम्पूर्णता का प्रतीक कलश अनेक प्रतीकों के रूप में विविध अर्थो को व्यक्त करने में सक्षम है। एक प्रकार से यह भी पद्म–पुष्प की ही भांति जीवन–तत्व का ही प्रतीक है।

चक्र

चक्र का मूल ज्यामितिय रूप वृत्त है। यह वैदिक काल से ही प्रतीक के रूप में अंकित हुआ। इसे विश्व का भवचक्र या संसार चक्र कहा जाता है। इसी दृष्टि से प्राणमय जीवन को जीवनचक्र और विराट विश्व की स्थिति को ब्रह्मचक्र कहा जाता है।[10] श्रीविष्णु के हाथ में स्थित होने के कारण इस वृत्तचक्र को सुदर्शन नाम दिया गया। इसे धर्मचक्र व काल चक्र भी कहा गया। ''सौन्दर्य लहरी'' में श्रीचक्र के लिए लिखा है– श्रीचक्रं वियत्–चक्रं। वियत आकाश को कहते हैं। यानि समूची सृष्टि का प्रतीक श्रीचक्र है।[11] यह शक्ति, गति व पूर्णता का प्रतीक है। जीवन को भी सुदर्शन चक्र का रूप माना गया जिसका दर्शन सबके लिए सुलभ व सुन्दर है, अतः यह जीवन का प्रतीक भी है। इसे सूर्य यानि ऊर्जा व काल का प्रतीक भी माना गया।

ऋग्वेद में इसे विष्णु का प्रतीक और समय चक्र का प्रतीक कहा गया है। यह विष्णु का प्रमुख आयुध है। यह प्राण, माया क्रिया, भाव, उद्यम व संकल्प का प्रतीक है। मौर्य सम्राट अशोक ने इसे धर्म का प्रतीक मानकर अपने धर्म प्रचार के लिये बने स्तम्भों व लाटों पर अंकित करवाया। इस प्रकार चक्र भी प्रतीक के रूप में अपनी भीतर अनेक अर्थ लिये भारतीय कला में चित्रित हुआ। मुख्य रूप इसे जीवन, काल, शक्ति, गति व ऊर्जा का प्रतीक माना गया।

साहित्यावलोकन

परिपूर्णानन्द वर्म्मा, प्रतीक–शास्त्र, उत्तर–प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1964। सम्बन्धित पुस्तक में प्रतीकों का अर्थ, विभिन्न प्रकार के प्रतीक व उनकी

व्याख्या, चिन्ह और संकेत आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। यह पुस्तक प्रतीकों की व्याख्या का अध्ययन करने के लिये उपयोगी है।

डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी, 1966।

उक्त पुस्तक के चतुर्थ व चौदहवें अध्याय में प्रतीकों का विस्तृत व्याख्या की गई है। यह प्रतीकों से सम्बन्धित जानकारी का प्रमुख स्त्रोत है।

डा0 गिरिराज किशोर अग्रवाल 'अशोक', कला–निबन्ध, ललित कला प्रकाशन, अलीगढ़, 1989।

इस पुस्तक का तीसरा अध्याय 'प्रतीकवाद', प्रतीकों के अर्थ व व्याख्या पर आधारित है। इसके माध्यम से प्रतीकों के बारे ज्ञान प्राप्त होता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम यह देखते है कि भारतीय कला में प्रतीकों के विभिन्न अर्थ हैं। प्रत्येक प्रतीक अपने भीतर असंख्य अर्थ लिये अंकित किये गये। कभी–कभी तो आकृति व वस्तु के रूप का अंकन न करके उनके स्थान पर उनके प्रतीक चित्रित हुए है। पद्म, चक्र व कलश, जीवन, सृष्टि, सुख–सम्पत्ति, शक्ति, गति व काल आदि अनेक रूपों के प्रतीक माने गये। जहाँ इन प्रतीकों के माध्यम से विभिन्न भावों को व्यक्त किया गया वहीं इन्हें देवत्व का प्रतीक भी माना गया। प्रतीक ही अमूर्त की सच्ची मूर्ति है। जो भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सका वह प्रतीक के द्वारा किया गया। इस कारण आज भी अनेक कलाकार अपनी कला में प्रतीक रूपों का सहारा लेते हैं तथा अनेक नये–नये प्रतीक रूपों का निर्माण करने में भी संलग्न है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अग्रवाल, डॉ0 गिरिराज किशोर, कला–समीक्षा, देवऋषि प्रकाशन, अलीगढ़, 1970, पृ0 सं0 122*
2. *श्रोत्रिय, डॉ0 शुकदेव, कला विचार, चित्रायन प्रकाशन, मुजफ्फरनगर, 1992, पृ0 सं0–77*
3. *मुकर्जी, राधाकमल, भारतीय कला का विकास, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1977, पृ0 सं0 59*
4. *गुप्त, डॉ0 जगदीश, भारतीय कला के पद्चिन्ह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1961, पृ0 सं0 82*
5. *मुकर्जी, राधाकमल, भारतीय कला का विकास, इलाहाबाद 1977, पृ0 सं0 60*
6. *प्रधान सम्पादक–शर्मा, डॉ0 मथुरालाल, आकृति, लेख–भारतीय सांस्कृतिक कला परम्परा का प्रतीकः कमल, कुमारी रीता, राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर, अक्टूबर 1971, पृ0 सं0 05*
7. *अग्रवाल, डॉ0 गिरिराज किशोर, कला समीक्षा, देवऋषि प्रकाशन, अलीगढ़, 1970, पृ0 सं0 128*
8. *श्रोत्रिय,डॉ0 शुकदेव, कला–विचार, चित्रायन–प्रकाशन, मुजफ्फरनगर, 2001, पृ0 सं0 81*
9. *चतुर्वेदी, डा0 गोपाल मधुकर, भारतीय चित्रकला, साहित्य संगम, इलाहाबाद, 1989, पृ0 सं0 115*
10. *अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी, 1966, पृ0 सं0 70*
11. *वर्म्मा, परिपूर्णानन्द, प्रतीक–शास्त्र, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1964, पृ0 सं0 77*